* विषय सूची *

पुस्तक मिलने का पताः—

श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया
जैन पारमार्थिक संस्था
बीकानेर
Bikaner, Bk. S. Rly.

बारह भावना (दोहे)

(१) अनित्य भावना।

(१) काया कञ्चन कामिनी, विषय भोग सब जोय।
क्षणभङ्गुर[१] संसार में, रहि न सके थिर कोय॥

(२) जेती वस्तु जहान[२] में, छिन छिन पलटा खाय।
जो दिखती हैं भोर में, सो संध्या में नाय॥

(३) इस जग में कोई कहीं, वस्तु न ऐसी खास।
जिसमें हरदम के लिए, किया जाय विश्वास॥

(४) लक्ष्मी संध्या की छटा, यौवन जल का फेन।
राजत[३] अक्षिनिमेष[४] तक, जाया भ्रात बहेन॥

(२) अशरण भावना।

(५) मात पिता सुत भामिनी,[५] अरु जेप्रिय परिवार।
काल-व्याघ्र[६] के गाल से, कोउ न राखनहार॥

(६) धर्म एक ही जगत में, शरणागत प्रतिपाल।
तेहि बिन रक्षा को करे, काल चक्र के जाल॥

(३) संसार भावना।

(७) लेकर गर्भारम्भ से, देह त्याग पर्यन्त।
जगत जीव सब दुःख से, पीड़ित हैं हा हन्त[७]॥

(८) कहीं कष्ट अतिवृष्टि से, कहिं वर्षा बिनु हाय।
दुःख भरा इस लोक में, शान्ति नहीं कहिं पाय॥

---

१ क्षणभङ्गुर–नाशवान्। २ जहान–संसार। ३ राजत–ठहरता है। ४ अक्षिनिमेष–क्षणमात्र। ५ भामिनी–स्त्री। ६ काल व्याघ्र–मृत्यु रूपी सिंह। ७ हन्त–खेद।

(९) रंगमञ्च१ यह जगत है, कर्म खिलावन हार।
नाना रूप बनाय के, चेतन खेलन हार॥
(१०) कभी जीव माता बना, पिता पुत्र फिर नार।
भाई भगिनी बन गया, यह विचित्र संसार॥
(११) यह संसार असार है, लेश न इसमें सार।
भटका जीव अनादि से, पाया दुःख अपार॥

[४] एकत्व भावना।

(१२) जीव अकेला जनमता, मरे अकेला होय।
कर्मों का संचय करे, सुख दुख भोगे सोय॥
(१३) सभी कुटुम्बी हर्ष से, धन भोगें मन लाय।
जीव अकेला कर्म का, अपराधी बन जाय॥
(१४) जीव अकेला स्वर्ग सुख, भोगे अति हर्षाय।
नरकादि दुख एकला, भोगत पुनि पछताय॥
(१५) तन त्यागे जग जात जो, रहे न सँग छिन एक।
किया कर्म लेकर चला, पर भव प्राणी एक॥

(५) अन्यत्व (परपत्त) भावना।

(१६) जीव जुदा काया जुदी, काया जीव न एक।
क्षणभङ्गुर यह काय है, जीव नित्य पुनि एक॥
(१७) काया पुद्गल-पिंड है, चेतन ज्ञान सरूप।
यह शरीर पुनि मूर्त्त है, जीव अमूर्त्त अनूप२॥
(१८) जीव अनादी काल से, सहता योग वियोग।
कभी किसी से बिछड़ता, कभी किसी से योग॥

---

१ रंगमञ्च–खेलने की जगह। २ अनूप–उपमा रहित।

(१६) जितनी वस्तु जहान में, वे सब हैं परकीय१ ।
इनसे ममता त्याग कर, ध्यावो आत्मस्वकीय२ ॥

(६) अशुचि भावना ।

(२०) घृणित वस्तु संयोग से, हुई काय तैयार ।
अशुचि वस्तु से है बढ़ी माता गर्भागार३ ॥
(२१) उत्तम सुन्दर सरस भी, होय भले आहार ।
जाकर अन्दर काय के, अशुचि होत तैयार ॥
(२२) नेत्रादिक नव द्वार से, झरता मैल हमेश ।
निर्मल यह नहिं बनि सके, करिये यत्न अशेष४ ॥
(२३) हाड़ मांस का पींजरा, ढँका चामड़ी माय ।
भरी असह दुर्गन्ध से, महाघृणित यह काय ॥

(७) आश्रव भावना ।

(२४) मन वच तन के शुभ अशुभ, योगों से जो जोय ।
गहे शुभा शुभ कर्म को, आश्रव जानो सोय ॥
(२५) एकेन्द्रिय आधीन हो, मृग खोते निज गात ।
पञ्चेन्द्रिय आधीन जो, फिर उनकी क्या बात ॥

(८) संवर भावना ।

(२६) जिस व्रत के स्वीकार से, आश्रव की सब आय ।
रुक जाती तत्काल ही, यह संवर कहलाय ॥
(२७) डूब बटोही५ जांय वे, छिद्र तरी६ चढ़ जांय ।
बन्द करें जब छिद्र को, सुख से वे तरि जांय ॥

---

१ परकीय-पराई । २ आत्म स्वकीय-अपनी । ३ गर्भागार-गर्भ में ।
४ अशेष-सम्पूर्ण । ५ बटोही-यात्री । ६ तरी-नाव ।

(२८) आश्रव से जिस कर्म की, होती छिन छिन आय।
जो रोके उन सबन को, संवर द्रव्य कहाय ॥
(२६) भव हेतुक सब कर्म का, मन से सच्चा त्याग।
भावरूप संवर वही, अस[१] मुनियों की वाग[२] ॥

(९) निर्जरा भावना।

(३०) जग का कारण भूत जो, कर्मों का सन्तान।
उसका क्षय है निर्जरा, मुनिजन का अस मान ॥
(३१) जिमि सोने के मैल को, आग साफ करि देत।
तिमि तप रूपी आग भी, आत्म शुद्धि करि देत ॥
(३२) पाप पहाड़ों के लिए, है यह वज्र स्वरूप।
पाप रूप घन[३] के लिए, है यह आंधी रूप ॥
(३३) इस तप के परभाव से, पापों का कर नाश।
बहुत जनों ने है किया, अविचल[४] शिवपुर[५] वास ॥

(१०) लोक स्वरूप भावना।

(३४) इस जग के संस्थान का, करना सदा विचार।
लोक भावना है यही, धर्म बढ़ावन हार ॥
(३५) लोक भावना के किये, तत्त्वज्ञान प्रदिपाय।
मन बाहर जावे नहीं, अन्दर थिर हो जाय ॥

(११) बोधि दुर्लभ भावना।

(३६) रत्न तीन सम्यक्त्व पुनि, ज्ञान बोधि का अर्थ।
साधन मिलना धर्म का, कहीं होत यह अर्थ ॥

---

१ अस–यह। २ वाग–वाणी। ३ घन–बादल। ४ अविचल–निश्चल।
५ शिवपुर–मोक्ष।

(३७) यहाँ ज्ञान ही मुख्य है, अन्य अर्थ है गौण।
ज्ञान बिना सद्धर्म को, पहचानेगा कौन॥
(३८) बोधि[1] रत्न दोउ तुल्य हैं, इनमें धर्म समान।
रत्नों में द्युति[2] मुख्य है, मुख्य बोधि में ज्ञान॥
(३९) पड़ अगाध भव कूप में, भटकत फिरे हमेश।
बोधिरत्न पावे कहाँ, जहँ माया का देश॥

(१२) धर्म भावना।

(४०) जिससे परभव सुधरता, इस भव में कल्याण।
वही धर्म है परम हित, अस आगम अभिधान[3]॥
(४१) चारों ही पुरुषार्थ में, धर्म बड़ा सरदार।
मूलभूत सब तत्त्व का, महिमा अमित अपार॥
(४२) कामधेनु चिन्ता रतन, कल्प वृक्ष सुख हेत।
सब सेवक हैं धर्म के, बिन मांगे फल देत॥
(४३) धर्म भावना के किये, जीव धर्म थिर होय।
धर्म कार्य में रत रहे, धर्म च्युत[4] ना होय॥

---

१ बोधि–सम्यक्त्व। २ द्युति–कान्ति। ३ अभिधान–कथन।
४ च्युत–गिरना।

चार भावना

(१) आदि जोति से पा गये, शिवपद अखिल[१] जिनेश।
सोइ जोति मो मन बसे, जग-मग रहे हमेश॥
(२) जो ये चारों भावना, भवतारन की सेतु[२]।
करूँ आत्म हित के लिए, अन्य न कोई हेतु॥
(३) मैत्री करुणा मुदित पुनि, उदासीनता धार।
साधक भव-वारिधि तरे, पावे पद अविकार॥
(४) ताते चारों भावना, भावो मन के योग।
जाते भव बन्धन कटें, मिटे सकल भव रोग॥
(५) भावेते नित भावना, चञ्चल मन थिर होय।
मुक्ति मार्ग को पाय के, शिव अधिकारी होय॥

मैत्री भावना

(१) जग के जीवों को सदा, करहु मित्र सम प्यार।
वैर न करिये काहु से, मित्र भाव मन धार॥
(२) वैर भाव उद्वेग की, पुनि भय दुख की खान।
मित्र भावना है सदा, शान्ति सुखों का थान॥

मैत्री भावना के लिए वैर त्याग—

(३) दुःख रूप दावाग्नि को, है जो पवन समान।
चिन्ता रूपी बेल को, सींचें मेघ समान॥
(४) धर्म रूप शुभ कमल को, नाशत बर्फ समान।
महाभयों की खान जो, कर्म बन्ध का थान।
(५) रागद्वेष पहाड़ का, ऊँचा शिखर समान।
ऐसा वैर विपक्ष[३] है, चित्त क्षोभ का थान॥

(१) अखिल–सब। (२) सेतु–पुल। (३) विपक्ष–शत्रु।

(६) वैर विरची से रहो, मनुओं! तू हुशियार।
त्यागे इसके जीत है, नेह करे ते हार॥
(७) शमभञ्जक[१] दुख मूल जो, चिन्ता का जो भेष[२]।
मैत्री भावों का रहे, जो प्रतिपच्छ हमेश॥
(८) मित्रो! वह गृह नहिं बसे, करे वैर जहँ वास।
कौरव पाँडव वंश का, किया इसी ने नाश॥
(९) ताते मैत्री भावना, भावो शुद्ध हमेश।
वैर भाव सब दूर हो, रहे न दुख का लेश॥
(१०) मैत्री भाव मनुष्य का, है गुण सहज महान।
वैर भावना जाहि में, वह नर पशू समान।
(११) मैत्री भाव विकासते, आस पास के लोग।
विसर जात हैं वैर को, करहिं उचित सहयोग॥
(१२) निज विकास हित चित्त जो, निर्मल करना होय।
तो तुम मैत्री भाव को, अपनाओ छल खोय॥

सभी जीव भाई हैं—

(१३) भव भव के सम्बन्ध से, जीव मात्र समुदाय।
नहिं कोई ऐसा रहा, जो न हमारा भाय॥
(१४) सबही जीव जहान के, जब हैं मेरे भाय।
करना उनसे वैर भी, अनुचित समझा जाय॥

क्षमापना—

(१५) सभी जीव जब हो चुके, बन्धु किसी भव मांय।
उनका बुरा न सोचना, करना सदा सहाय॥

---

(१) शमभञ्जक–शान्ति को नष्ट करने वाला। (२) भेष–रूप।

(१६) जो तुमसे अज्ञान वश, हुई किसी की हानि।
तो तू शाम सुबह उसे, करो शान्त सनमानि॥

मैत्री क्रम—

(१७) ज्यों ज्यों आतम शक्ति का, होता जाय प्रकाश।
मैत्री रूपी बेल का, त्यों त्यों होत विकाश॥
(१८) जड़ इसकी निज गेह में, जो हो सुन्दर वेष।
स्कन्ध कुटुम्बों में रहे, शाखा सारे देश॥
(१९) इहि विधि मैत्री भावना, भावो शुद्ध हमेश।
तो पुनि मैत्री बेलड़ी, बाढ़े सारे देश॥
(२०) अन्य मतों के साथ तू, कर नहिं जरा विरोध।
तत्त्व खोज की दृष्टि से, कर तू मत का शोध[१]॥
(२१) किसी जाति के लोग से रख नहिं जरा विभेद।
मित्र भाव त्यागो नहीं, जो स्वभाव कुछ भेद॥
(२२) जीव आदि छह द्रव्य का, है स्वभाव में भेद।
तो भी ये जग में रहें, हिलमिल, रखें न भेद॥
(२३) चन्द्र रहे, आकाश में, भू पै रहे चकोर।
मैत्री इनकी नित बढ़े, कभी न होवे थोर[२]॥
(२४) जैसे उक्त पदार्थ में, देश जाति का भेद।
करे न किञ्चिन्मात्र भी, मित्र भाव का छेद॥
(२५) वैसे तुमको उचित है, कर जीवों से प्रेम।
होने पै कुछ भेद भी, तज मत मैत्री नेम॥
(२६) रे दुर्भाग! जवासिया! वर्षा ऋतु के साथ।
जलता क्यों इस भांति से, हरा भरा तू नाथ॥

(१) शोध-खोज। (२) थोर-कम।

(२७) भाई अब मैं क्या कहूँ, अपने दुख की बात।
धनस्पती का उदय लखि, सूख गया मम गात॥
(२८) अरे दुष्ट जवासिया !, तू तो बड़ा नादान।
पर सम्पत्ति लखि व्यर्थ ही, क्यों होता हैरान॥
(२९) थावर जग में जन्म से, जड़तावश[१] मैं नीच।
पर[२] मानव ईर्ष्यालु जो, है वह मुझ से नीच॥

प्रमोद भावना

(१) लखि गुणिजन की पूजना, आदर सह पुनि मान।
हर्षित होना ताहि ते, है प्रमोद शुभ खान॥
(२) वीतराग अरिहंत का, पुनि जे साधु सुजान।
दानी श्रावक वर्ग का, सबका कर गुणगान॥
(३) कर्त्तव्य व्रत पाल कर, जो चाहसि भव पार।
तो ईर्ष्या मन से तजो, रोधक[३] सेवा द्वार॥
(४) धन जन सम्पत्ति अन्य की, देख न मन ललचाव।
अन्य पुरुष सन्मान को, देख हृदय हर्षाव॥
(५) उदित सूर्य को देख कर, जिमि सरोज[४] खुश होत।
ऋतु वसन्त को देखते, जिमि वन विकसित होत॥
(६) सुनत मेघ की गर्जना, नाचत मत्त[५] मयूर।
चातक जिमि जल बिन्दु पा, हो प्रसन्न भरपूर॥
(७) हे मानव ! इहि भांति तूँ, पर उन्नति को देख।
अति प्रसन्न शुभ दृष्टि से, ताहि ओर तूँ पेख[६]॥

---

(१) जड़तावश-अज्ञानतावश। (२) पर-परन्तु।
(३) रोधक-रोकने वाला। (४) सरोज-कमल। (५) मत्त-मस्त-मतवाला। (६) पेख-देख।

(८) करो न ईर्ष्या अन्य से, तेहि उन्नति हर्षाव।
ऐसा करने से सभी, करें तुम्हारा चाव ॥
(९) हिलमिल तुम सब से रहो, प्राणी से रख प्रेम।
इहि विधि[१] भव वारिधि[२] तरो, कर जप तप पुनि नेम ॥
(१०) चिरकालिक संस्कार से, यह मन ईर्ष्या खान।
पर उन्नति नहिं सहि सके, वृथा जले नादान ॥
(११) ईर्ष्या सद्गुणहारिणी, पाप बढ़ावनि हार।
इह भव में दुख दायिनी, पर भव नाशनि हार ॥
(१२) ऐसी ईर्ष्या को जरा, दो नहिं मन में थान।
जो चाहसि इस लोक में, या पर भव कल्याण ॥
(१३) यह प्रमोद शुभ भावना, करती सदा प्रमोद।
सभी दुःख को दूर कर, मन में रखती मोद ॥

करुणा भावना

(१) मन अरु तन के दुःख से, दुखी जीव को जोय।
दुःख नाश की चाह को, जानो करुणा सोय ॥
(२) करुणा गुण समदृष्टि का, जैनागम के माँय।
धर्ममूल करुणा कही, अन्य धर्म के माँय ॥
(३) साधुपना श्रावकपना, बिन करुणा नहिं होय।
करुणा बिन नहिं जा सके, सेवा पथ पै कोय ॥
(४) जीवन प्रिय सब जीव को, सब को सुख की चाह।
तिरस्कार दुख मृत्यु के, नहिं जावे कोइ राह ॥
(५) तुम्हें चाह जिस वस्तु की, उसे शीघ्र कर दान।
ताहि वस्तु को हाथ ले, तुम्हें भाग्य दे मान[३] ॥

(१) इहि विधि–इस प्रकार। (२) भव वारिधि–संसार समुद्र।
(३) मान–आदर।

(६) दुखी जीव जिस द्रव्य से, सुख नहिं पाये होय।
वह धन नहिं कुछ काम का, बकरी गल[१]–थन सोय ॥
(७) दुखी जीव जिस काम से, रक्षित हुए न होंय।
दुखी जीव जिस शक्ति से, उद्धृत हुए न होंय ॥
(८) मोक्ष मार्ग जिस बुद्धि से, नहिं पहचाना होय।
हैं नहिं ये कुछ काम के, भार रूप पुनि सोय ॥
(९) सुख, हित, विद्या, कीर्ति पुनि, सुत विनीत सब जोय।
पुण्य वृक्ष के फल सभी, जो सुखदायी होय ॥
(१०) जो चाहो इस वृक्ष के, हरेभरे हों पात।
करुणा जल से सींचिये, इसकी जड़ दिन रात ॥
(११) करुणा जल अभिषेक[२] बिन, पुण्य वृक्ष नशि जाय।
ता बिन सुख सम्पन्नता, क्षण में स्वयं विलाय[३] ॥
(१२) दीन, अपंग, दरिद्र नर, रोगी भाग्य विहीन।
विधवा, वृद्ध, अनाथ, शिशु, पर पीड़ित, बलहीन ॥
(१३) विकट समय जो मर रहे, बिना अन्न बिन घास।
ये सब करुणा पात्र हैं, रखें तुम्हारी आश ॥

मध्यस्थ भावना

(१) जग के जीवों को सदा, करने में अघ[४] दूर।
मध्य भावना का मनन, साथ देय भरपूर ॥
(२) मध्य भावना के बिना, सम[५] हो विषम[६] समान।
पर-अघ-मोचन दूर रह, आपुहि गुण विलगान[७] ॥

---

(१) बकरी-गल-थन–बकरी के गले में लटकने वाला स्तन।
(२) अभिषेक–सींचना। (३) विलाय–नष्ट हो जाता है।
(४) अघ–पाप। (५) सम–समभाव। (६) विषम–विषम भाव।
(७) विलगान–दूर होना।

(३) जग सेवा जग जीव का, करने में उपकार।
पुनि शुभ धर्म प्रचार में, सहन शीलता धार ॥
(४) शत्रु तुम्हें यदि मारने, को भी उद्यत होय।
कोप खेद करना नहीं, जेहि तव कारज होय ॥
(५) चेतन इस संसार में, ऐसे हैं कुछ जीव।
जो तेरे प्रतिपक्ष हैं, पाप कर्म के सींव[१] ॥
(६) साम, दाम अरु भेद से, दे सुन्दर उपदेश।
पुनि तेहि मीठे वचन से, बोधित करो हमेश ॥
(७) सभी उपायों से यदपि, नहिं समझे यह क्रूर।
जरा न तेहि अपमान कर, तेहि से हट तूँ दूर ॥
(८) पापी का मत नाश कर, कर पुनि पाप विनाश।
किसी जीव के नाश से, हिंसा आवे पास ॥
(९) हिंसा के आगमन से, पाप सृष्टि अधिकाय।
अधः पात हो आत्म का, पुण्य क्षीण हो जाय ॥
(१०) छेदन करना वस्त्र का, मल नाशन के हेत।
नीति शास्त्र के मार्ग में, नहिं यह शोभा देत ॥
(११) जिमि जल कोमल वस्त्र से, मैल हटाया जाय।
बातों से करि नम्र तिमि, पापी पाप नशाय ॥
(१२) देश हितैषी मनुज जो, अधिक होय बलवान।
बदला ले नहिं शत्रु से, करे ताहि सन्मान ॥
(१३) सहन शीलता धारना, वीरों का है काम।
धार न सके सहिष्णुता,[२] दुर्बल नर बलखाम[३] ॥

---

(१) सींव–हद। (२) सहिष्णुता–सहनशीलता। (३) बलखाम–बलहीन।

(१४) चेतन की बल वृद्धि से, सहन शीलता होय।
तातें तुम धारण करो, शान्ति खमा[१] शुभ दोय।
(१५) उदासीनता धार लो, जो निज मन के माँय।
तो अरि[२] त्यागे धृष्टता, पुनि सेवक बन जाय॥
(१६) ये सब ही शुभ भावना, भावे भैरवदान।
जो भावे शुभ भावसे, होय परम कल्यान॥

(१) खमा–क्षमा। (२) अरि–शत्रु।



आत्म-प्रबोध भावना ।

(१) नमों आदि अरिहंत को, जिन प्रकटा सब ज्ञान ।
धर्म सिखाया जगत को, दूर किया अज्ञान ॥
(२) सकल चराचर विश्व जग, हस्तामलक[१] समान ।
सो प्रभु मति निर्मल करें, विघ्न हरे बलवान ॥
(३) लोक हितैषी धर्म रत, मुनि जन ज्ञान समेत ।
कीनी बहु सद्भावना, भव नाशन के हेत ॥
(४) सोइ अधार कछु पाय के, आत्म मनन के हेतु ।
करता हूँ सद्भावना, और न कोई हेतु ॥
(५) यह शरीर पर्याय जो, नित, नित पलटा खात ।
पर मैंने जाना नहीं, दिन दिन निरखत गात[२] ॥
(६) अभी देह की यह थिती, निरखत ममता जात ।
प्रभु की वाणी सत्य वह, "अथिर विनश्वर[३] गात" ॥
(७) परमाणू के मिलन से, बना हुआ यह गात ॥
बिखरन से इनके नहीं, चेतन का कुछ जात ॥
(८) जिमि अकाश में बादली, घुमड़त बिछुरत आप ।
कोई जग कर्त्ता नहीं, होता आपो आप ॥
(९) चेतनकाय वियोग से, क्यों तू है घबरात ।
रखने से क्या रहि सके, छोड़े से क्या जात ॥
(१०) मैं तो चेतन अमर हूँ, दर्शन सुख अरु ज्ञान ।
वीर्य आदि जो सहज गुण, सब मेरे पहचान ॥
(११) काय रहे या जाय जो, पुद्गल का परिणाम ।
मैं अविनाशी एक सा, चिन्ता का क्या काम ॥

(१) हस्तामलक-हथेली पर रहा हुआ आंवला । (२) गात-शरीर ।
(३) विनश्वर-नष्ट होने वाला ।

(१२) अब तक था मैं जानता, है यह मेरी देह।
पाली पोसी प्रेम से, कर कर नित नव नेह॥
(१३) पर अब मैंने समझ ली, इस काया की चाल।
अब तक हुई न आपणी, आगे कौन हवाल॥
(१४) मेरी होती काय तो, रहती मम आधीन।
रोग, शोक अरु मृत्यु के, क्यों होती आधीन॥
(१५) एक तुम्हारे देह के, कितने सगे न अन्त।
मोह फाँस में सब बंधे, मूर्ख अरु मतिमन्त॥
(१६) जग का नाता झूठ है, क्यों फँसता इस फंद।
जीव एक अरु नित्य है, सहज सच्चिदानन्द॥
(१७) सम्पत्ति कारण आज तक, बांधे कर्म अपार।
बिन भोगे छूटे नहीं, करो कोटि उपचार॥
(१८) बीती सो बीती सही, अब तो ममता छाँड।
नया कर्म बांधो मती, कृत कर्मों को झाड़॥
(१९) मैं हूँ निर्मल गगन सा, रूप हीन चैतन्य।
आदि अन्त से हीन हूँ, महिमा अमित अनन्य॥
(२०) सभी तत्त्व को जान कर, करूँ आतम जयवन्त।
हरने में समरथ बनूँ, रागद्वेष बलवन्त॥
(२१) हाड़ मांस अरु रक्त जहँ, मल मूत्रादि लखाय।
क्षणभङ्गुर इस काय में, ममता क्यों अधिकाय॥
(२२) स्वर्गादिक फलदान से, मित्र मृत्यु को जान।
हित कारक कोई नहीं, इससे बढ़कर मान॥
(२३) मृत्यु बिना इस बंध से, कौन छुड़ावन हार।
भवसागर में डूबते, गुरु बिन कौन उबार॥
(२४) ढूंढत ढूंढत तू थका, मन! शमसुख[1] बहुबार।
पर नहिं मरण समाधि बिन, शम सुख का दातार॥

---

१ शमसुख-मोक्षसुख।

(२५) मृत्युवृक्ष की छाँह में, कर विषयों का त्याग।
जो नहिं त्यागो विषय को, तो चौरासी लाग॥
(२६) सात धातुओं से बनी, यह औदारिक देह।
गलते बार न लाग ही, जिमि जल-उपलन-गेह[१]॥
(२७) नय उपनय अरु हेतु से, दे दृष्टान्त अनेक।
चेतन को पहचानते, मुनि जन सहित विवेक॥
(२८) चेतन तू इस काय पे, कर नहिं तनिक सनेह।
यह शरीर तेरा नहीं, तू निर्मल निर्लेह[२]॥
(२९) व्याधी कर्माधीन है, नहिं औषध आधीन।
ताते औषध छोड़ के, हो शुभ ध्यान विलीन॥
(३०) वैद्यराज जिनराज की, औषध मरण समाधि।
सेवन से आवें नहीं, आधि[३] व्याधि[४] उपाधि[५]॥
(३१) अजर अमर अक्षय सदा, अव्याबाध[६] अनन्त।
सपने जे सुख नहिं मिले, वे आवें विकसन्त॥
(३२) तेज ताप से तप यथा, सोना निर्मल होत।
समता से सह वेदना, जीव अमल तिमि होत॥
(३३) 'हायवोय'[७] तुम ना करो, बढ़ने से दुख जोर।
हाय किये दुख ना घटे, बँधते कर्म कठोर॥
(३४) इससे अच्छा है यही, सह दुख भजि समभाव।
नया कर्म बांधो नहीं, सञ्चित कर्म खपाव॥

---

१ जल उपलन गेह – बर्फ का घर। विलीन–तल्लीन।
२ निर्लेह–निर्लेप–लेप रहित। ३ आधि–मानसिक चिन्ता। ४ व्याधि–शारीरिक रोग। ५ उपाधि–बाहरी झगड़े। ६ अव्याबाध – रोग रहित। ७ हायवोय–वेदना के न सह सकने से जो कायरता के शब्द निकलते हैं।

(३५) जो तूने नरकादि में, बहु सागर पर्यन्त।
सही विविध विध वेदना, जिस का नहिं कुछ अंत॥
(३६) ताहि वेदना सामने, मनुज वेदना जोय।
क्या है यह दुख दायिनी, अल्प कालिनी सोय॥
(३७) यह तो दुख, सुख मूल है, सार रूप पुनि सोय।
कायर पन को त्याग कर, सह मन दुख दृढ़ होय॥
(३८) यह तो तेरा ही किया, मत्र भव का ऋण भार।
तीव्र असाता वेदनी, बांधा कर्म अपार॥
(३९) यही असाता वेद कर, उऋण हुआ तू आज।
कर्म भार हलका हुआ, हुआ सकल सुख साज॥
(४०) हो परवश तू नरक में, पीड़ा सही अनन्त।
पर उससे कुछ नहीं सरा, विन समकित बलवन्त॥
(४१) सहने से भी वेदना, बहु सागर पर्यन्त।
हुई सकाम न निर्जरा, हुआ न भव का अन्त॥
(४२) अमित निर्जरा होयगी, होगा भव का अन्त।
आ क्षण[१] दुख समभाव से, सहवे जो गुणवन्त॥
(४३) चेतन तू यह जान ले, निश्चय है यह बात।
किये कर्म भोगे बिना, प्राणी मोक्ष न जात॥
(४४) प्रबल पुण्य के उदय से, मिला मनुज भव जान।
कहा भगवती सूत्र में, तीर्थङ्कर भगवान॥
(४५) ता में भी बहु पुण्य से, आर्य क्षेत्र में आय।
उत्तम कुल चिर जीविता, रोग हीन तन पाय॥
(४६) पञ्चेन्द्रिय परिपूर्णता, सद्गुरु का संयोग।
ता पै मिलना कठिन है, प्रवचन श्रवण सुयोग॥

[१] आ क्षण = इस समय।

(४७) आगम सुन कर श्रद्धना, कठिन कहा जिनराय।
उससे भी पचखाण का, करना कठिन कहाय॥

(४८) श्रद्धालू संसार में, करे त्याग पचखाण।
ग्यारह व्रत भी साध ले, कठिन सुपातर दान॥

(४९) ऐसा अवसर पाय के, कर मन नेनिक प्रमाद।
नहिं तो फिर पछतायगा, समय चूकने बाद॥

(५०) धर्म काम में मत करो, समय मात्र परमाद।
आनँद सुख शाश्वत सदा, मिले धर्म परसाद॥

(५१) जब तक घट में प्राण हैं, जपता रह नवकार।
दुख तेरे कट जायेंगे, होगा भव से पार॥

(५२) ले तू अपने साथ में, धर्म-रत्न-भण्डार।
वरना तू फिर जायगा, खाली हाथ पसार॥

(५३) कर प्रमाद मत धर्म में, आयुष बीती जाय।
काल चक्र है घूमता, कुण जाणे कब आय॥

(५४) बिना धर्म सेवन किये, भोगे दुःख अनेक।
चौरासी भमता रहा, अब तो राख विवेक॥

(५५) हाट बगीचा खेत पुनि, सोना चाँदी धाम।
जेती सम्पति जगत की, मृत्यु सके नहिं थाम॥

(५६) ठगिनी सम्पति से सदा, मन तू रह हुशियार।
यह इतनी मायाविनी, जिसका वार न पार॥

(५७) धन्य महाजन है वही, दे धन को शुभ ठाम।
श्रावक व्रत को धार कर, करता आतम काम॥

(५८) जागो प्राणी भोर है, नहिं अब है यह रात।
सोने में तुमने किया, कुम्भकरण[illegible]

(४६) आतम हित की भावना, भावे भैरवदान।
पुनि राखे यह कामना, होय जगत कल्याण॥

माता पिता के प्रति—

(१) मात पिता इस देह के, लीजे खूब विचार॥
यह शरीर था आपका, खूब किया था प्यार॥
(२) थी इसकी इतनी थिती, अब न आयु अवशेष।
नेह करे कुछ ना सरे, बाढ़े दुःख विशेष॥
(३) यह तन उतना ही रहे, जितनी वय अवशेष।
है नहिं ऐसी शक्ति जो, रख ले इसे विशेष॥
(४) आतम साधन में मुझे, दीजे अब सहयोग।
गमनागमन विनष्ट हो, मिटे सकल भवरोग॥
(५) काया और कुटुम्ब का, तज कर सब सम्बन्ध।
मेरा चेतन दृढ़ बने, ऐसा करो प्रबन्ध॥

पत्नी के प्रति—

(१) हे सहयोगिनी! हे प्रिये! सुन मम हित की बात।
मेरा तेरा नियत था, इतने दिन का साथ॥
(२) तूने मम इक चित्त से, सेवा की दिन रात।
अब यह तन विनसन लगा, करो धर्म की बात॥
(३) जो सच्ची हितकारिणी, हो पतिभक्ता नार।
इस अवसर ममता तजो, दुर्गति की दातार॥
(४) जाता था परगाँव जब, तुम विवेक की खान।
देती थी मुझको सदा, खाने को पकवान॥
(५) परभव भाता बांध दो, शुभ परिणाम अथोरि[१]।
अब तू मोह ममत्व कर, अहित करो ना मोरि॥

(१) अथोरि– बहुत।

(६) धर्मसंगिनि ! दो मुझे, अन्त समय में साज।
भव भव का फेरा टले, सीझे आतम काज ॥
(७) जिन निगदित[१] शुभ धर्म का, पालन करना रोज।
बन कर सच्ची श्राविका, करना आतम खोज ॥
(८) धर्म ध्यान में लीन हो, जिन वाणी अनुसार।
मोह त्याग शुभ कर्म कर, धीरज मन में धार।
(९) अशुभ ध्यान को त्याग कर, करो सदा शुभ ध्यान ॥
ज्ञान सहित शुभ कर्म कर, करो आत्म कल्याण ॥
(१०) ज्ञानादिक शुभ रत्न धर, करो नियम पचखाण।
जिन भाषित शुभ धर्म का, निशदिन करना मान ॥

पुत्र के प्रतिः—

(१) नीति सहित संसार से, सुत ! रखना व्यवहार।
वंश दिपाना आपना, तज कर मिथ्याचार ॥
(२) सद्गुरु की सेवा करो, श्रावक व्रत लो धार।
श्रद्धा रक्खो धर्म में, आगम के अनुसार ॥
(३) जूआ सट्टा फाटका, कभी न करना भूल।
लोगों में इज्जत घटे, पुनि चिन्ता का मूल ॥
(४) लोक हंसी नृप दंड पुनि, जिन कामों से होय।
उन कामों से दूर रह, जाते हंसी न होय ॥
(५) संप किये लक्ष्मी बढ़े, प्रेम रखे सुख होय।
मामलबाजी[२] से सदा, घर का धन छिन[३] होय ॥
(६) संगत करना गुणिन की, शिक्षा उनकी मान।
खोटी आदत त्याग कर, जन्म करो फलवान[४] ॥

१ निगदित–भाषित–कहा हुआ। २ मामलबाजी–मुकदमा बाजी। ३ छिन–क्षीण। ४ फलवान–सफल।

(७) न्याय मार्ग का पथिक बन, कभी न कर अन्याय।
नहिं विरुद्ध कुछ काम कर, ज्ञाति वर्ग के मांय॥
(८) उस मत में शामिल रहो, जिसमें सत्य विचार।
खींचा तानी मत करो, गुरुजन शिक्षा धार॥
(९) अवगुण काढ़ो आपना, दोष न दीजे काहु।
मत कर निन्दा अन्य की, गुण ग्राहक बनि जाहु॥
(१०) शान गुमान करो नहीं, चलो सादगी चाल।
मीठा वचन पुकार कर, हिल मिल सब से हाल॥
(११) तू जौहरि यह कूँजड़ी, क्यों करता तकरार।
इसकी भाजी विरसरसी, तेरे रत्न अपार॥
(१२) बुरी रीति को त्याग कर, सत्यमार्ग को धार।
जैन धर्म पालन करो, आगम के अनुसार॥

शान्ति मार्ग—

(१) कहाँ शान्ति का मूल है, ढूंढ रहा संसार।
कस्तूरी निज नाभि में, पर मृग भ्रमत गँवार॥
(२) मैं ही दुख का मूल हूँ, मैं ही परमानन्द।
स्वामी हूँ मैं दास हूँ, हूँ बँधित स्वछन्द॥
(३) राग द्वेष दो पट विकट, चेतन उसमें बन्द।
पराधीनता है जहाँ, वहाँ न है आनन्द॥
(४) क्यों करता तू राग है, तेरा है कह कौन।
संकट में तू देखना, होंगे सारे मौन॥
(५) अरे द्वेष क्यों कर रहा, हैं सब तेरे मीत।
तेरा मोक्ष घटा रहे, लड़ता उल्टी रीत॥
(६) जैसे चन्दन लेप से, मिटे देह सन्ताप।
वैसे धीरज से मिटे, चेतन के त्रय-ताप[१]॥

(१) त्रय-ताप—आधि, व्याधि, उपाधि।

(७) जो देते हैं गालियाँ, या करते तकरार।
घे सुगती को भेजते, तुझको धक्का मार॥
(८) रे अधीर क्यों हो रहा, धीरज का गुण धार।
जो भवसागर विकट का, पाना ही है पार॥
(९) आग आग से ना बुझे, पानी से बुझ जाय।
क्रोध क्रोध से ना मिटे, समता से मिट जाय॥
(१०) जैसे चन्दन लेप से, मिटे दाह ज्वर पीर।
तैसे समता से मिटे, क्रोधी की तासीर॥
(११) सुख में फूला क्यों फिरे, क्यों दुख में घबराय।
जो सुख के दिन ना रहे, तो दुःख क्यों टिक जाय॥
(१२) अनुभव का कर दीप लें, बढ़ आगे हर बार।
तब पहुँचेगा ध्येय[१] को, ए चेतन अविकार।
(१३) पाने से संवेग के, दृढ़ होता वैराग्य।
राग द्वेष को जीतता, होता विकसित[२] भाग्य॥
(१४) बना जीव निर्वेद तो, छोड़ेगा आरम्भ।
करता है वह पथ[३] विमल[४], शिवपुर[५] का प्रारम्भ॥
(१५) श्रद्धा से ही प्राप्त हों, त्याग और वैराग।
सुर सुख को भी त्यागते, कर शिव सुख अनुराग[६]॥
(१६) सेवा देती विनय को, विनय सभी गुणखान।
गुण का धारक जीव ही, करे मोक्ष प्रस्थान॥
(१७) शत्रु मित्र सुख दुःख में, साम्य भाव को धार।
यह सामायिक सुखद है, रुके पाप आचार॥
(१८) क्षमा याचना से मिटे, क्लेश और संताप।
बढ़े मित्रता भय हटे, विकसित हों गुण आप॥

---

१ ध्येय–लक्ष्य। २ विकसित–विस्तार होना, फैलना। ३ पथ–रास्ता।
४ विमल– निर्मल। ५ शिवपुर–मोक्ष। ६ अनुराग–प्रेम।

(१६) क्रोध विजय से नाथ क्या, होता है उपकार।
क्षमा शान्ति-प्रद प्राप्त हो, हटे कर्म का भार॥
(२०) मान विजय से नाथ क्या, होता है उपकार।
विनय शील बन जाएगा, छोड़ कर्म का भार॥
(२१) माया जीतन से प्रभो, क्या होता उपकार।
सरल-भाव-सम्पन्न हो, सद्गति का दातार॥
(२२) लोभ विजय से जीव का, क्या होता उपकार।
पायेगा संतोष को, सब सुख का भण्डार॥
(२३) धर्म रूप शुभ वृक्ष का, विनयमूल पहचान।
ताते यश कीरत्ति बढ़े, पावे पद निर्वाण॥
(२४) यदि कोई वन्दन करे, या कर दे अपमान।
राखे समता दोउ में, सो ज्ञानी पहचान॥
(२५) शस्त्र घाव कुछ काल तक, करता है बेचैन।
वचन घाव लग जाय तो, दुखित करे दिन रैन॥
(२६) सत्वों से हो मित्रता, गुणिजन का हो चाव।
कृपा क्लिष्ट[1] जन पर रहे, वैरी पर समभाव॥

कल्याण-मार्ग

(१) 'बूँद बूँद से घट भरे'—यह जानत सब कोय।
गुण का ग्राहक अंत में, गुण-रत्नाकर[2] होय।
(२) जिस गुण की अनुमोदना, करते हैं नर नार।
वह गुण आता साथ है, छाया के अनुसार॥
(३) पर निन्दक पर दोष को, लेता हाथ पसार।
गुण गाहक गुण को गहे, दुनिया है बाजार॥

---

१ क्लिष्ट–दुखी। २ गुण-रत्नाकर – गुणों का समुद्र।

(४) कर्मों से इस जीव को, जानो अति बलवंत।
मव भव के सब कर्म का, क्षण में करता अंत॥
(५) मोह कर्म की प्रबलता, करे कर्म बलवान।
मोह कर्म की शिथिलता, करत कर्म की हान॥
(६) देह वृक्ष की छाँह में, बैठे आत्म सफ़ीर१।
कौन जानता कब उड़े, जैसे पञ्जर२ कीर३॥
(७) एक आत्म पहचान से, भव भव के सब रोग।
मिट जाते हैं जीव के, यों कहते मुनि लोग॥
(८) जैसे बादल के हटे, सूर्य प्रकट हो जाय।
राग द्वेष पट के हटे, ज्ञान प्रकट हो जाय॥
(९) महारोग इस जगत के, कैसे हैं भगवान।
प्रथम रोग 'आरंभ' है, द्वितय 'परिग्रह' जान॥
(१०) रजकण पड़कर नेत्र में, खटकत जिमि दिनरैन।
समदृष्टी आरम्भ से, रहता तिमि बेचैन॥
(११) ज्ञानी अपनी देह से, करते कर्म विनाश।
अज्ञानी की देह है, केवल उसकी पाश४॥
(१२) नर भव आया, है गया, इस भव में रख ध्यान।
निष्फल चला न जाय यह, कर इसमें कल्याण॥

आत्म निन्दा—

(१) जीव अनेकों वध किये, बोला मिथ्यावाद।
चोरी से पर धन हर्या, किया ब्रह्म५ बरबाद॥
(२) ढेरी की बहु वस्तु की, जिसका नहिं कुछ काम।
पड़ी पड़ी वह सड़ गई, भरी हुई गोदाम॥

१ सफ़ीर – मुसाफिर। २ पञ्जर – पींजरा। ३ कीर – तोता।
४ पाश – जाल, बन्धन। ५ ब्रह्म–ब्रह्मचर्य।

(३) हूँ लम्पट हूँ लालची, कर्म किया कई कोड़।
तीन भुवन में है नहीं, मेरी कोई जोड़॥

(४) छिद्र पराया रात दिन, जोता हूँ जगनाथ।
कुगति तणी करणी करूँ, जोड़ूँ उनमें साथ॥

(५) मैं अवगुण की कोटड़ी, नहिं गुण मुझ में कोय।
पर गुण देख सकूँ नहीं, तिरना किस विध होय॥

(६) विन कीधा विन भोगिया, फोकट कर्म बंधाय।
आर्त्त रौद्र मिटता नहीं, कीजे कौन उपाय॥

(७) झूठ कपट बहु सेविया, किया पाप का संच।
भोलों को ठगिया घणा, करि अनन्त परपंच॥

(८) मन चंचल थिर ना रहा, राचा रमणी रूप।
कर्म विटमना क्या कहूँ, नाँखे दुर्गति कूप॥

(९) अधमों में मैं हूँ अधम, अवगुण भरे अनेक।
किसी हिताहित कर्म का, मुझमें नहीं विवेक॥

(१०) मैं क्रोधी मैं लालची, नहिं छोड़ा अभिमान।
मैं कपटी अविनीत हूँ, पापी भैरवदान॥

(११) हाय न मुझसे हो सका, जनता का उपकार।
यश के कारण ही किया, मैंने सब व्यवहार॥

(१२) नाथ! दिवस कब आयगा, जब होऊँ अनगार।
कर्म बोझ को डाल कर, बनूँ सिद्ध अविकार॥

आलोचना—

(१) अनुपम[१] जिनकी ज्योति से, जग मगात संसार।
सदा हमारे मन बसो, जिनवर जग हितकार॥

(२) करूँ वन्दना वीर को, और जपूँ नवकार।
पापों की आलोचना, करता हूँ [illegible]॥

(१) अनुपम—उपमारहित।

(३) प्रथम शरण अरिहंत का, द्वितय सिद्ध का जान।
तृतय सन्त जन का कहा, चौथा धर्म प्रमाण ॥
(४) शरण गही प्रभु आपकी, करता आत्म विचार।
मैंने भव भव में प्रभो !, सेव्या पाप अठार ॥
(५) चौरासी लख योनि को, दुखित किया दिन रात।
लेखा उसका क्या कहूँ, कहते जी घबरात ॥
(६) थावर त्रस के प्राण से, मैंने खेले खेल।
पूँजी से देना बढ़ा, मिले न बिल्कुल मेल ॥
(७) अष्टादश१ जो पाप हैं, उनका बोझ अपार।
डगमग नैया कर रही, कैसे पाऊँ पार ॥
(८) जाकर भव भव में किये, मैंने अत्याचार।
सोच सोच कर हो रहा, विचलित हृदय अपार ॥
(९) मन वच तन के योग से, जो कुछ किय अतिचार।
जैनागम विपरीत जो, भाषण या आचार ॥
(१०) कल्प विरोधी काम या, अकरणीय कुछ काम।
आर्त्त रौद्र किय ध्यान जो, धर्मध्यान से वाम२ ॥
(११) मेरे चेतन ने कभी, जो की दुष्ट निगाह।
नियमों का कुछ भंग या, बुरी वस्तु की चाह ॥
(१२) श्रावक धर्म विरुद्ध जो, किया कभी कुछ काम।
पुनि दर्शन या ज्ञान के, किया कभी कुछ वाम ॥
(१३) देशव्रत आगम तथा, सामायिक अतिचार।
मोह विवश सेवन किया, जो कुछ मिथ्याचार ॥
(१४) मन, वच, तन, व्यापार को, वश में रखा न होय।
जो क्रोधादि कषाय का, दमन किया नहिं होय ॥

(१) अष्टादश-अठारह। (२) वाम-विपरीत।

(१५) अणुव्रत पहले पांच हैं, गुणव्रत तीन सुजान।
शिक्षा व्रत हैं चार पुनि, ये बारह व्रत जान॥
(१६) एक देश या सर्व से, हुई विराधना कोय॥
सेवें हो अतिचार जो, मिच्छा दुक्कडं मोय॥
(१७) इस भव पर भव में किया, पनरा कर्मादान।
त्रिविध त्रिविध से वोसिरूँ, जो दुर्गति की खान॥
(१८) यंत्रादिक आरंभ के, मैंने कीने काम।
त्रिविध त्रिविध से वोसिरूँ, फेर नहीं परिणाम॥
(१९) बाग बगीचा, खेत घर, जो भी मेरे होय।
त्रिविध त्रिविध से वोसिरूँ, ममता तहाँ न मोय॥
(२०) मेरे निज के नाम में, घर दुकान जो होहिं।
उन सबको मैं त्यागता, ममता जरा न मोहिं॥
(२१) निन्याणु अतिचार में, जो जो सेव्या होय।
करता हूँ आलोचना, मिच्छा दुक्कडं मोय॥
(२२) मैं अपराधी जन्म का, सेव्या पाप अठार॥
निज आतम की साख से, बार बार धिक्कार॥
(२३) व्रत नियमादिक में कभी, टंटा लाग्या होय।
अरिहंत सिद्ध की साख से, मिच्छा दुक्कडं मोय॥
(२४) चौरासी लखयोनि में, फिरियो बार अनंत।
पाप अलोऊँ पाछला, अब तारो भगवन्त॥
(२५) जाने अनजाने कभी, सेवे पाप महान।
उन सब की आलोचना, करता

[illegible]

(१) चौरासी-[illegible]
क्षमा करें [illegible] ॥

(२) मैत्री भाव सदा [illegible] ॥
वैर नहिं हमको कहीं, किसी जीव के साथ ॥

(३) मन, वच, तन, व्यापार से, [illegible] ।
वे सब मिथ्या हों सदा, [illegible] ॥

(४) पुनि उनसे जो कुछ किया, [illegible] ।
क्षमा चाहता ताहि के, मन, वच, तन, व्यापार ॥

(५) पूज्य श्रमण मुनि संघ को, हाथ जोड़ सिर नाऊँ[२] ।
उनके दोषों को खमूँ, पुनि निज दोष खमाऊँ ॥

(६) भाव सहित सब जीव से, धर्म बुद्धि थिर होय ।
खमूँ खमाऊँ दोष को, जो दोनों का होय ॥

(७) राग द्वेष अकृतज्ञता[३], या आग्रह[४] वश जोय ।
कही बात हर तौर से, क्षमा करें सब कोय ॥

(८) सेठ महंता[५] शेकड्या, जो मेरे संग होय ।
या मेरे सम्पर्क में, जो कोइ आये होय ॥

(९) सगे कुटुम्बी बन्धु जन, या गोत्रज जो कोय ।
खमूँ खमाऊँ दोष को, हुआ परस्पर जोय[६] ॥

(१०) झगड़ा टंटा आदि था, क्रोध विवश व्यवहार ।
किया किसी के साथ जो, जो कुछ मिथ्याचार ॥

(११) या कोइ ऐसा दोष हो, जिसका नहिं कुछ ज्ञान ।
क्षमा करें मम दोष को, मुझको बालक [illegible]

---

(१) रोष-द्वेष । (२) नाऊँ [illegible]
(४) आग्रह-हठ । (५) [illegible]

(१२) चौरासी लख योनि से, तन, मन, वच से जान।
घमा याचना कर रहा, श्रावक भैरवदान ॥
(१३) सकल चराचर जगत का, होय सदा कल्यान।
सब प्राणी पर हित रहे, करें धर्म का मान ॥
(१४) सब मंगल का मूल जो, सभी शिवों का हेतु।
जिन शासन विजयी रहे, सभी धर्म का केतु ॥

॥ इति शुभम् ॥

पुस्तक प्राप्ति स्थानः—
श्री अगरचन्द भैरों[illegible]
श्री सेठिया [illegible]

कषाय-विजय



१—क्रोध विवश नर और की, सहन करे ना बात।
खोता आत्म विवेक को, करे आप की घात॥

२—क्षमा शील नर क्रोध को, करता है उपशांत।
सहनशीलता गुण बढ़े, गिना जाय वह दान्त[1]॥

३—कायर जन क्या गह सके, क्षमा रूप तलवार।
क्षमा वीर भूषण कहे, गुरु जन बारंबार॥

४—अहंकार के भाव को, मान कहा जिनराय।
अभिमानी का विनय गुण, छिन में जाय विलाय॥

५—मानी अपने मान में, तुच्छ गिने संसार।
करे अहित वह विश्व का, बांध कर्म का भार॥

६—रहा न रावण राजवी, रहे न चक्री[2] राय।
फिर करना अभिमान का, कैसे उचित कहाय॥

७—मृदुता से अभिमान को, बदल दीजिये मित्र।
विनय वन्त का चरित जग, होता परम पवित्र॥

८—मन वच तन की कुटिलता, माया का परिणाम।
पर वञ्चन[3], पर धन हरण, हैं माया के काम॥

९—सरल भाव संसार में, माया का प्रतिकार[4]।
आदर पाता है वही, जिसके सरल विचार॥

१०—द्रव्यादिक की चाहना, लोभ वृत्ति कहलाय।
ममता, मूर्च्छा, गृद्धता, हैं इसके पर्याय॥

११—लोभ विवश नर नीचता, के करता है काम।
त्यों-त्यों बढ़ती मूर्च्छना,[5] ज्यों-ज्यों बढ़ते दाम॥

१२—संतोषामृत के बिना, कभी न हो आनन्द।
सुख चाहो तज लोभ दो, पड़ो न इसके फन्द॥

कषाय-विजय

१—क्रोध विवश नर और की, सहन करे ना बात।
खोता आत्म विवेक को, करे आप की घात॥

२—क्षमा शील नर क्रोध को, करता है उपशांत।
सहनशीलता गुण बढ़े, गिना जाय वह दान्त[1]॥

३—कायर जन क्या गह सके, क्षमा रूप तलवार।
क्षमा वीर भूषण कहे, गुरु जन बारंबार॥

४—अहंकार के भाव को, मान कहा जिनराय।
अभिमानी का विनय गुण, छिन में जाय विलाय॥

५—मानी अपने मान में, तुच्छ गिने संसार।
करे अहित वह विश्व का, बांध कर्म का भार॥

६—रहा न रावण राजवी, रहे न चक्री[2] राय।
फिर करना अभिमान का, कैसे उचित कहाय॥

७—मृदुता से अभिमान को, बदल दीजिये मित्र।
विनय वन्त का चरित जग, होता परम पवित्र॥

८—मन वच तन की कुटिलता, माया का परिणाम।
पर वञ्चन[3], पर धन हरण, हैं माया के काम॥

९—सरल भाव संसार में, माया का प्रतिकार[4]।
आदर पाता है वही, जिसके सरल विचार॥

१०—द्रव्यादिक की चाहना, लोभ वृत्ति कहलाय।
ममता, मूर्छा, गृद्धिता, हैं इसके पर्याय॥

११—लोभ विवश नर नीचता, के करता है काम।
ज्यों-ज्यों बढ़ती मूर्च्छना,[5] त्यों-त्यों बढ़ते दाम॥

१२—संतोषामृत के बिना, कभी न हो आनन्द।
सुख चाहो तज लोभ दो, पड़ो न इसके फन्द॥

---

१ दान्त-इन्द्रियादि का दमन करने वाला। २ चक्री राय—चक्रवर्ती राजा। ३वञ्चन-ठगाई। ४ प्रतिकार—विरोध। ५ मूर्च्छना—तृष्णा।